

# मुक्तिबोध के काव्य में व्यक्त यथार्थ

## (द्वितीय वर्ष, हिंदी प्रतिष्ठा)

हिन्दी की समकालीन कविता में मुक्तिबोध का अत्यंत विशिष्ट स्थान है। उन्होंने कविता के साथ-साथ, कहानी, उपन्यास, काव्यालोचन, आलोचनात्मक निबंध आदि विधाओं के क्षेत्र में भी अपना अमूल्य योगदान दिया है। परंतु वे मुख्यतः एवं मूलतः कवि थे। उनकी कविताएँ सर्वप्रथम 'तारसप्तक' 1943 ई. में प्रकाशित हुईं। तत्पश्चात् उनका काव्य-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' 1961 ई. में, तथा दूसरा काव्य-संग्रह 'भूरी-भूरी खाकधूल' 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। उनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'काठ का सपना' 1967 ई. एवं 'सतह से उठता आदमी' 1971 ई., 1970 ई. में 'विपात्र' नाम से लघु उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है। 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबंध' 'एक साहित्यिक की डायरी' 1964 ई. 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' 1971 ई. उनके निबंध संग्रह हैं। 'कामायनी: एक पुनर्विचार' नामक समीक्षात्मक पुस्तक 1967 ई. में प्रकाशित हुई थी। 'भारत इतिहास और संस्कृति' पुस्तक इन्होंने 1943 ई. से पूर्व विद्यालयी छात्रों के लिए लिखी थी, जिसे मध्य-प्रदेश सरकार के शिक्षा-विभाग ने पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार भी किया था, किन्तु कुछ राजनीतिक कारणों से बाद में सरकार द्वारा लोक-सुरक्षा कानून के अधीन यह पुस्तक अवैध घोषित कर दी गयी। 1980 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से उनकी समस्त रचनाएँ 'मुक्तिबोध रचनावली' शीर्षक से छह भागों में प्रकाशित हुईं।

उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में पूर्ण साम्य है। वास्तव में मुक्तिबोध हिन्दी के उन साहित्यकारों में से एक हैं, जो अपने जीवन-काल में पूर्णतः उपेक्षित रहे। सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संकटों से निरंतर जूझते हुए भी जीवन के अंतिम क्षणों तक जिजीविषा को कायम रख सके। उनकी इस जिजीविषा का गहरा प्रभाव उनकी रचनाओं पर दिखाई पड़ता है। उनकी विचारधारा पर मार्क्सवाद, नवरहस्यवाद, मनोविश्लेषणवाद एवं अस्तित्ववाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने वस्तुतः इन विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने मराठी तथा हिन्दी के संतकाव्य, हिन्दी के छायावादी काव्य एवं बंगला एवं मराठी के महत्वपूर्ण काव्य का गहन अध्ययन किया था। उनके काव्य-निर्माण की प्रक्रिया में जहाँ माखनलाल चतुर्वेदी का प्रभाव है, वहीं प्रसाद एवं पंत का भी गहरा प्रभाव है। काव्य के क्षेत्र में यथार्थ-चित्रण का आग्रह प्रगतिवादी काव्य-धारा के साथ ही आरंभ हो गया था। परंतु मुक्तिबोध का यथार्थ-बोध प्रगतिवादियों के यथार्थ-बोध से भिन्न है। उनका मानना था कि यथार्थ को देखने और उसके सही उपयोग के लिए बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। उच्च स्तर की आत्म-निरपेक्षता, सतर्कता और जागृत दृष्टि द्वारा ही यथार्थ के विभिन्न पक्षों को देखा जा सकता है। "यथार्थ की गति को अनुकूल दिशा में मोड़ने के लिए, यथार्थ के व्यक्त रूपों का-समग्र व्यक्त रूपों का, उनकी गति और स्थिति में, अध्ययन करना आवश्यक है। उनके बहिरन्तर सम्बन्धों और परस्पर क्रिया-प्रतिक्रियाओं का आकलन आवश्यक है। यह मूल, प्रधान, अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रथम कार्य है, क्योंकि इसी के आधार पर आगे के कार्य किए जा सकते हैं।"<sup>1</sup>

मुक्तिबोध यथार्थ को जड़ रूप में नहीं देखते। वे साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं समझते। वे कला के यथार्थ को सामाजिक परिवर्तन के लिए हथियार के रूप में प्रयोग में लाने की बात सोचते हैं। वे वर्तमान जीवन-यथार्थ को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करते हुए 'कल होने वाली घटनाओं की कविता' सृजित करते हैं। उनके अनुसार, भविष्य के यथार्थ को देख पाना भी यथार्थ-बोध के अंतर्गत ही आता है। जीवन-यथार्थ बहुत विस्तृत एवं व्यापक होता है। उनमें विविधता एवं जटिलता होती है- "यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील होता है और उसके तत्व भी परस्पर गुंफित हैं।"<sup>2</sup> मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएँ लंबी हैं, साथ ही उनका वस्तु-पक्ष भी संश्लिष्ट एवं जटिल है। इन कविताओं में प्रायः आत्मविश्लेषण, रहस्यवाद, इतिहास-चेतना, सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियाँ तथा कभी-कभी प्रेम संदर्भ भी आए हैं।

मुक्तिबोध ने यथार्थबोध के विकास के लिए आत्मचेतस एवं विश्वचेतस होने की बात की है। आत्मचेतस होने के लिए सर्जकों को अपनी चेतना का संस्कार एवं परिष्कार करना होगा, अपने अनुभूति-क्षेत्र का विस्तार करना होगा। जब तक सर्जक विश्वचेतस नहीं होगा वह सही अर्थ में आत्मचेतस भी नहीं हो सकता। मुक्तिबोध के अनुसार, विश्वचेतस होने के लिए ऐसी विश्व दृष्टि का विकास करना होगा, जिससे व्यापक जीवन-जगत की व्याख्या हो सके - "कवि हृदय आज के मूल द्वंद्वों का अध्ययन करे अर्थात् अपनी संपूर्ण चेतना द्वारा आज की वास्तविकता की तह में घुसे और ऐसी विश्वदृष्टि का विकास करे, जिससे व्यापक जीवन-जगत की व्याख्या हो सके और अंतर्जगत के महत्वपूर्ण आंदोलनों का बोध हो। तभी उसका विषय संकलन सम्बन्धी विवेक भी पुष्ट होगा। तभी हम आस-पास फैली हुई मानव वास्तविकता के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन और चित्रण कर सकेंगे।"<sup>3</sup> विश्व-दृष्टि के विकास के लिए मुक्तिबोध भविष्य-निर्माण के संघर्ष में आस्था रखने तथा निष्ठापूर्वक इसमें जुट जाने की सलाह देते हैं। अपनी मान्यताओं पर चलते हुए वे निरंतर विश्वचेतस होने की चेष्टा करते रहे। उनकी आत्म-सजगता जीवन यथार्थ को संपूर्णता से देखने और समझने के लिए तत्पर है। उनका यह भी मानना है कि जब तक कवि विभिन्न वैचारिक परंपराओं को आत्मसात नहीं कर लेता, तब तक उसकी आत्मचेतना विकसित नहीं होगी। मुक्तिबोध ने जिन यथार्थ चित्रों, भावों एवं विचारों को अपने काव्य में स्थान दिया है वे उनके विवेकसंगत चुनाव को प्रतिध्वनित करते हैं। उन्होंने विवेक की आँखों से देख-

परख कर ऐसे ही यथार्थ बिंबों की योजना की है, जिनका उन्होंने अपने बाह्य अथवा आभ्यंतर जीवन में साक्षात्कार कर लिया है। यही कारण है कि उनका यथार्थ-बोध सहानुभूति-दाता का यथार्थ-बोध नहीं, बल्कि उस सहभोक्ता का है, जिसने उस कटु यथार्थ को स्वयं झेला है। उनकी चेतना में आज का यथार्थ कटु ऐंद्रिय बिंबों का रूप लेकर उपस्थित है। भूल का सिंहासनस्थ होना, ईमानदार का उपेक्षित रह जाना, चिलचिलाते फासले, ज़िंदगी का काटा होना, बड़े-बड़े पोस्टरों के सामने आदमी का छोटा लगना आदि। उनकी जागृत चेतना तो यथार्थ से प्रभावित है ही, बल्कि उनका अवचेतन भी निरंतर इस यथार्थ से जुड़ा रहा है। जीवन-यथार्थ के संवेदनों से वे अभिभूत से हो चुके हैं। इस स्थिति के परिणामस्वरूप वे मानसिक जगत के आभ्यंतर-यथार्थ को देखने-परखने में समर्थ हो गए हैं। स्वप्न के भीतर स्वप्न एवं विचारधारा के भीतर अन्य विचारधारा को देख पाने की दृष्टि उन्होंने विकसित कर ली है।

“स्वप्न के भीतर एक स्वप्न, / विचारधारा के भीतर और / एक अन्य

सघन विचारधारा प्रच्छन्न !! कथ्य के भीतर एक अनुरोधी

विरुद्ध विपरीत, / नैपथ्य-संगीत !! / मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क”<sup>4</sup>

अनेक प्रतीक चित्रों के माध्यम से कवि ने मानव मन के भीतरी तहों के कटु सत्यों को उजागर किया है। इस प्रकार, यथार्थ के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं - एक बाह्य तथा दूसरा आभ्यंतर। बाह्य यथार्थ बाहरी जगत का तथा आभ्यंतर यथार्थ मानसिक जगत का है।

जितना ही तीव्र है द्वन्द्व / क्रियाओं घटनाओं का / बाहरी दुनियाँ में

उतनी ही तेजी से भीतरी दुनियाँ में / चलता है द्वन्द्व-

भाव-जगत के यथार्थ की अभिव्यक्ति कवि ने मानव-मात्र के जीवन में व्याप्त अनेक भाव-स्थितियों के चित्रण द्वारा किया है। चिंता, विषादाकुलता, क्षुब्धता, त्रास, अहंग्रस्तता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, अन्ध-स्वार्थपरता, अलगाव, विवेकहीनता आदि अनेकानेक भावों एवं भाव-स्थितियों का अंकन मुक्तिबोध के काव्य में अनायास ही हो गया है। चारों ओर प्रश्न ही प्रश्न हैं, समस्याएँ हैं, किन्तु उनके उत्तर या समाधान नहीं दिखाई पड़ते हैं। जिससे किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसे में बाहरी और भीतरी जगत में द्वन्द्व उत्पन्न होता है, और यह द्वन्द्व निरंतर चलता ही रहता है।

निरंतर बढ़ती स्वार्थ-परता के कारण आत्मनिर्वासन की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसे में कवि को लगता है कि आत्मा की मृत्यु हो गयी है। आत्मा आज अपना अर्थ खो चुकी है। सारे श्रेष्ठ मानवीय भाव दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। कवि ने भाव-जगत के यथार्थ का चित्रण अनेक स्थानों पर, ‘शून्य’ एवं ‘अंधेरे’ के चित्रण के माध्यम से भी किया है। समाधान के अभाव में व्यक्ति के भीतर शून्य घर कर गया है। मुक्तिबोध की कविता में ‘अंधेरा’ तथा अंधकारवाची शब्द कभी संज्ञा तो कभी विशेषण रूप में बार-बार आते हैं। वास्तव में व्यक्ति के मानस जगत का अंधकार ही परिवेश पर आच्छादित हो गया है। उनकी कविता में बाह्य यथार्थ का भी भरपूर चित्रण हुआ है। दोनों यथार्थ परस्पर गहरे से जुड़े हुए हैं। मुक्तिबोध द्वारा चित्रित बाह्य यथार्थ का संबंध मुख्यतः भारतीय जन-जीवन के यथार्थ से जुड़ा है। कवि ने शोषित वर्ग की भीषण स्थिति का चित्रण संवेदना के गहरे स्तर पर उससे जुड़कर किया है। निम्न एवं निम्न मध्य वर्ग भौतिक सुविधाओं के लिए निरंतर संघर्ष करता हुआ कंकालप्राय शेष रह गया है। भविष्य की कोई आशा उसके पास शेष नहीं रह गयी है। यह निम्न वर्ग समाज का वह अंग है, जहाँ भौतिक अभाव के कारण उपवास, मृत्यु, दैन्य, महा अपमान, चिंता, क्षोभ आदि का भयंकर यथार्थ सदैव दिखाई पड़ता है। इस वर्ग की स्त्रियों के साथ कवि ने पूर्ण अपनत्व का भाव प्रकट किया है। यह कवि के जीवन का अपना यथार्थ है। इस वर्ग की स्त्रियों का कवि ने अनेक स्थलों पर मार्मिक चित्रण किया है। भयंकर गरीबी के कारण इन स्त्रियों को हर हालत में मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है। यहाँ तक कि गर्भवती होने पर भी।

आँखों में तैरता है चित्र एक / उर में संभाले दर्द

गर्भवती नारी का / कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से

कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़, / घर के काम बाहर के काम सब करती है,

अपनी सारी थकान के बावजूद / मजदूरी करती है, / घर की गिरस्ती के लिए।

कवि को यह देख आश्चर्य होता है कि इस भयंकर यथार्थ का सामना करते हुए भी उस स्त्री के ‘पीले अवसाद भरे कृश मुख पर न जाने किस आशा की दृढ़ता है। यह ऐसे वर्ग की स्त्री है, जिसके लिए भविष्य में कुछ भी नहीं है। सारा भविष्य ऐसी ही मजदूरियों से घिरा हुआ है। पूंजीवादी सभ्यता में निर्धन व्यक्तियों के शरीर-श्रम के बिकने के साथ-साथ उनके समस्त अधिकार भी बिक जाते हैं। वह

मजबूरी में चुप रहता है। स्त्रियों का शोषण पुरुषों से भी अधिक होता है। वे शोषक वर्ग के लोगों द्वारा वासना का शिकार बनाई जाती हैं। कभी-कभी अभावग्रस्त होकर वह स्वयं शरीर बेचने को मजबूर होती है। कई बार इन स्त्रियों को बलात्कार का शिकार होना पड़ता है।

खूबसूरत कमरों में कई बार / हमारी आंखों के सामने / हमारे विद्रोह के बावजूद

बलात्कार किए गए / नक्षीदार कमरों में

भोले निर्व्याज नयन हिरणी से / मासूम चेहरे / निर्दोष तन बदन

दैत्यों की बाँहों के शिकंजों में / इतने अधिक जकड़े गये

खूबसूरत नक्षीदार कमरे शोषक वर्ग के अमीरों के हैं और भोले मासूम चेहरे शोषित वर्ग की असहाय स्त्रियों के हैं स्त्री-पुरुष के साथ-साथ शोषित वर्ग के बच्चे भी शोषण का शिकार होते हैं। उनका संघर्ष जन्म से पूर्व ही शुरू हो जाता है। कई बार तो ये गर्भ में ही मर जाने को अभिशाप्त होते हैं, और कुछ जन्म के कुछ समय पश्चात ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जो बच जाते हैं वे भयंकर भूख और अभाव में जीते हैं। उन्हें न भरपेट भोजन मिल पता है, न पहनने को वस्त्र। ठीक से उनकी देखभाल नहीं होने के कारण उनके बाल बिखरे रहते हैं, और शरीर में धूल-मिट्टी भरी रहती है। बचपन से ही उन्हें मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है। शोषित वर्ग के स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी को घोर कष्ट में जीवन जीना पड़ता है। दूसरी तरफ़ शोषक वर्ग के लोग विलासिता का जीवन जीते हैं। गाँव हो या शहर निम्नवर्ग सर्वत्र ही उत्पीड़ित है। नगर का जादुई व्यक्तित्व स्वर्गीय आभा से चमकता रहता है। अमीर सुविधाओं से भरी ज़िंदगी जीते हैं, गरीबों का अलग मुहल्ला होता है। अमीरों के मुहल्ले में जो चाँदनी खूबसूरत मैगजीन के पृष्ठों सी है, वह शोषितों के मुहल्ले में 'कुहासे के भूतों की सांवली चुनरी' जैसी लगती है। चाँद कंजी आँखें, गंजे सिर और टेढ़े मुँह वाला प्रतीत होता है। कवि को लगता है कि यह ऊपरी चमक-दमक शहर का यथार्थ नहीं है, बल्कि यथार्थ तो उन शोषितों का अभाव एवं पीड़ा से कराहता जीवन है। नगरीकरण से अमीरों को लाभ हो रहा है, गरीब और भी अधिक उपेक्षित होकर गंदी बस्तियों में रहने को मजबूर हो रहे हैं।

मुक्तिबोध का यथार्थ-चित्रण 'हॉरर' या त्रास उत्पन्न करता है। निम्नवर्ग एवं निम्नमध्यवर्ग का जीवन सुविधाओं के अभाव में त्रासद हो गया है। इस त्रासद स्थिति से निकलने का उनके पास कोई मार्ग नहीं है। वे कहीं न्याय माँगने भी नहीं जा सकते। राजनीतिज्ञों से भी वह वर्ग अत्यधिक निराश है, क्योंकि उनकी राजनीति मुख्यतः सत्ता की राजनीति है। बुद्धिजीवी एवं अन्य अधिकारी स्वार्थ से चिपके हैं, अतः वे सत्ता से डरते हैं और उनके खिलाफ आवाज नहीं उठाते हैं। समाज के वे सभी लोग जो इस स्थिति के विरुद्ध कदम उठा सकते थे वे सब चुप हैं -

सब खामोश, / मनसबदार, /शाइर औ, सूफी,

अल गजाली इब्ने सिन्ना, अलबरूनी

आलिमों, फाजिल सिपहसालार, सब सरदार हैं खामोश।

यह स्थिति त्रास को ही जन्म देती है। वर्तमान युग की परिस्थितियों ने कुछ और नए कारण जोड़ दिये हैं, जो त्रास उत्पन्न करनेवाले हैं जैसे बौद्धिक विकास के साथ वैचारिक एवं चारित्रिक पतन, यंत्र सत्ता के सामने व्यक्ति की निरीहता, आदर्श विखंडन आदि। मूल्यहीनता ने बर्बर भोगवाद को जन्म दिया है। भोग से रोग का भय जुड़ा हुआ है। मुक्तिबोध का यथार्थ-बोध युग यथार्थ को गतिशील काल के परिप्रेक्ष्य में देखने में समर्थ है। आज के यथार्थ के पीछे भूतकाल की एक व्यापक पृष्ठभूमि है। आज का यथार्थ बीते हुए काल के यथार्थ का विकराल रूप है। यदि समय रहते सुधार के प्रयत्न नहीं हुए तो भविष्य का यथार्थ इससे भी अधिक कट्ट होगा। मुक्तिबोध के यथार्थ-चित्रण में किसी काल-विशेष का यथार्थ-बोध नहीं होता, बल्कि उसमें सदियों और युगों की पीड़ा और वेदना सटीक बिंबों के माध्यम से प्रकट हुई है।

वेदना नदियाँ / जिनमें कि डूबे हैं युगानुयुग से/ मानो कि आँसू

पिताओं की चिन्ता का उद्दीग्न रंग भी, / विवेक पीड़ा की गहराई बेचैन,

डूबा है जिनमें श्रमिक का संताप।

भारतीय जन-जीवन युगों-युगों से प्रताड़ित होता रहा है। जन-शोषण सदैव होता रहा है, कवि गतिशील यथार्थ को आज, कल और परसों के यथार्थ के रूप में देखता है।

आज के अभाव के, व कल के उपवास के /व परसों की मृत्यु के....

दैन्य के, महा अपमान के, व क्षोभ के। भयंकर चिंता के उस पागल यथार्थ का

दीखता पहाड़.....स्याह।

मुक्तिबोध का यथार्थ-बोध जिस प्रकार काल विशेष का नहीं है उसी प्रकार क्षेत्र विशेष का भी नहीं है। वास्तव में उनका यथार्थ-बोध बहुआयामी है, उसमें परिवेश, समाज, अस्तित्व, विज्ञान, इतिहास आदि का बोध भी सम्मिलित है। जीवन की वास्तविकता से वे प्राणपण से जुड़ रहे हैं और काव्य में उनकी अभिव्यक्ति भी कर रहे हैं। जीवन-यथार्थ को इतना महत्व देते हुए भी उन्होंने अभिव्यक्ति के स्तर पर फैंटेसी शिल्प को अपना माध्यम चुना। इन्होंने फैंटेसी शिल्प को भाववादी शिल्प माना है, यह यथार्थवादी शिल्प से भिन्न होता है। मुक्तिबोध का फैंटेसी शिल्प उनके यथार्थ-बोध को धूमिल नहीं करता है बल्कि उसे और स्पष्ट करता है। उनकी फैंटेसी यथार्थ से पूर्ण संबद्ध है। मुक्तिबोध फैंटेसी को सोद्देश्य मानते हैं। फैंटेसी के माध्यम से जीवन-यथार्थ का चित्रण अनेक संवेदनात्मक उद्देश्यों से जुड़ जाता है। शोषण एवं अन्याय का विरोध, आक्रोश, विद्रोह तथा क्रांति की भावना को स्वर देना आदि उद्देश्यों को पूरा करने में फैंटेसी शिल्प पूरा सफल रही है। मुक्तिबोध अपनी किसी बात को अंतिम सत्य नहीं मानते थे। वे अपनी रचनाओं में संशोधन-परिशोधन करते थे। अनेक विचारधाराओं की झलक भले इनके साहित्य में प्राप्त होती है, परंतु वास्तविक रूप में मुक्तिबोध यथार्थ-बोध के कवि हैं।

डॉ. बिभा कुमारी,

हिंदी विभाग, विश्वेश्वर सिंह जनता महाविद्यालय, राजनगर

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध-द्वितीय संस्करण-पृ. 130
2. एक साहित्यिक की डायरी-द्वितीय संस्करण पृ. 31
3. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध-द्वितीय संस्करण-पृ. 20
4. चाँद का मुँह टेढ़ा है-(चतुर्थ संस्करण)-पृ. 14